# 76 समाज पर प्रहार जम्मू का विवाह कानून

**बजरंगलाल अग्रवाल**

कुछ दिनों पूर्व जम्मू कश्मीर की मुती सरकार ने एक कानून बनाना चाहा, जिसके अनुसार जम्मू कश्मीर में होने वाले किसी विवाह समारोह में 50 से अधिक व्यक्ति न सम्मिलित हो सकते है न ही भोजन कर सकते है । इस कानून में उन्होंने विवाह समारोह में उपयोग की जाने वाली मिठाइयां की भी अधिकतम मात्रा और संख्चया निश्चित कर दी । सरकार के इस अति आदर्शवादी अव्यावहारिक प्रयास का राज्य व्यापी विरोध हुआ और सरकार को अपने कदम वापस खींचने पड़े । जम्मू कश्मीर सरकार के ये यप्रयास सम्पूर्ण भारत में 50 वर्षो से किये जा रहे प्रयासों के अनुसार ही थे, जिनमें निकम्मी सरकारें न्याय ओर सुरक्षा के अपने घोषित दायित्व से दूर हटकर समाज के सामाजजिक कार्यो में निरंतर हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त करती रहीं है और दश के प्रतिबद्ध साहित्यकारों, समाजसेवियों तथा पेशेवर बुद्धिजीतियों से प्रशंसाा प्राप्त करती रहीं हैं । किसी भी सरकार के ऐसे उच्च आदर्शवादी अव्यावहारिक प्रयास का कभी संगठित विरोध नहीं हआ, सिवाय आयोडिन युक्त नमक कानून को छोड़कर जिसमें सिर्फ सर्वोदय ने विरोध की पहल की, अन्यथा अब तक सर्वोदय भी ऐसे कानूनों के विरोध में कभी नहीं आया । नमक कानून के बाद पहली बार भारत में ऐसे कानून का विराध हुआ है जिसमें ‘ शासन ने अपनी सारी सीमाएँ तोड़कर समाज के सामाजिक मामलेां में हस्तक्षेप का प्रयास किया हो । चाहे नमक कानून का सर्वोदय द्वारा किया गया विरोध हो या जम्मू काश्मीर का विवाह खर्च नियंत्रण कानून, विरोध सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक मद्दों पर केन्द्रित था । मेरे विचार में विरोध सैद्धान्तिक मुद्दो पर होना चाहिये था जो नहीं हुआ । अतः गंभीर चर्चा आवश्यक प्रतीत होती है ं ।

समाज एक सर्वाधिकार सम्पन्न तथा स्वतंत्र इकाई है । उसे अपनी व्यवसाि करने या व्यवस्था संबंधी निणय की पूरी स्वतंत्रता है । ‘ शासन समाज की पूरक इकाई है , जिसका उद्धेश्य समाज के अन्तर्गत रहकर उसकी व्यवस्था में सहयोग करना है । समाज विरोधी तत्वों पर नियंत्रण रखने के उद्धश्य से समाज अपने बीच से एक इकाई कास निर्माण करता है और उस इकाई को एक संविधान की सीमा में रहते हुए अपराध नियंत्रण के अधिकार देता है , उस इकाई को ‘ शासन कहते है ।

सैद्धांतिक रू से आदर्श स्थिति यह है कि सामाज ‘ शासन रहित हो किन्तु यह स्थिति सिर्फ आदर्श ही है, व्यावहारिक नहीं । ‘ शसन रहित समाज हो ही नहीं सकता क्योंकि समाज स्वयं में एक अमूर्त इकाई है । साथ ही समाज कभी न अपराध रहित हुआ है, न ही होगा । अतः किसी भी परिस्थिति में अपराध नियंत्रण के लिये एक मूर्त व्यवस्था करनी अनिवार्य है और ऐसी मूर्त व्यवस्था ही ‘ शासन है । ‘ शासक या शासन का यह स्वभाव होता है कि वह अधिक से अधिक ‘ शक्ति अपने पास समेटना चाहता है और समाज का यह स्वभाव होता है कि वह ‘ शासन को कम से कम दायित्व देना चाहता है । तानाशाही अथवा किसी भी अन्य व्यवस्था में तो ‘ शासक को अधिकार समेटने में कोई बाधा नहीं होती, किन्तु प्रजातंत्र एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक पांच वर्ष में निर्वाचित ‘ शासकीय टीम के प्रत्येक सदस्य को भविष्य में काम करते रहने की समाज से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है । प्रजातंत्र में समाज से शक्ति समेटना ‘ शासकों के लिए कठिन कार्य होता है । इसलिये ‘ शासक के पक्ष को जनहित का नाटक करना आवश्यक हो जाता है । सामान्यतया ‘ शासन के जिम्मे न्याय ओर सुरक्षा का दायित्व स्वाभाविक रूप से हुआ करता है । अन्य सारे कार्य समाज संभालता है । यदि समाज को अपनी किसी कुरीति में सुधार करना है तो वह सुधार कभी ‘ शासन के माध्यम से नहीं होता । ‘ शसन की सहायता समाज तभी लेता है, जब अधिकांश लोग समाज सुधार को मान लें किन्तु एक दो प्रतिशत न माने तथा उक्त कुरीति का बहुत व्यापक असर समाज पर पड़ता हो । वैसे तो ऐसे मामलों में भी कहीं ‘ शासन के हस्तक्षेप का उदाहरण नहीं है, किन्तु यदि हम इतना मान भी लें तो कभी सामाजिक समस्याओं के समाधान में ‘ शासकीय हस्तक्षेप की परंपरा नहीं रही है । मुसलमानों के गुलामी काल से यह परंपरा ‘ शुरू हुई । अंग्रेजों के समय में भी यह परंपरा नाम मात्र की ही थी किन्तु स्वतंत्रता के बाद तो यह आम बात हो गई । नित नये नये कानून बनने लगे और धीरे धीरे स्थिति यहां तक आई कि जनहित की पूरी परिभाषा ही सुरक्षा और न्याय से हटकर नशामुक्ति,छुआछुत निवारण और नारी उत्पीड़न निवारण आदि सामाजिक समस्याओं पर आकर टिक गई । शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप की कोई सीमा ही नहीं रही । समाज का सम्पूर्ण स्वरूप लगभग समाप्त होकर ‘ शासन ही समाज बन गया । ‘ शासन ने अपने इर्द गिर्द वित्त पोषित साहित्यकारों की एक फौज खडत्री कर ली । ये तथाकथित साहित्यकार समाज की छोटी छोटी बुराइयों को भी बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करने का काम करते रहते हैं और ‘ शासन उन साहित्यकारों की आवाज को समाज की आवाज घोषित कर तत्काल ही समाज पर एक नया कानून थोप देता है । इन साहित्यकारों ने सामाजिक बुराइयों पर समाज का ध्यान आकर्षित किया यह तो प्रशंसनीय है किनतु इन्होनं कभी शासकीय हस्तक्षेप का विरोध न करके अपनी सदस्यता संशय में डाल दी । शासन और उनके वित्त पोषित साहित्यकारों न कुछ सामाजिक समस्याओं का ऐसा चित्र समाज के समक्ष प्रस्तुत किया कि समाज को भी तिल सी समस्या ताड़ दिखने लगी । आम भारतीयों ने भी ऐसे ‘ शासकीय समाज सुधारों का स्वागत करना शुरू कर दिया । शासन धीरे धीरे समाज को कमजोर करता गया और अब तो यह हाल है कि शासन दैत्याकार स्वरूप ग्रहण कर चुका है और समाज उसके समक्ष एक बौना बालक ।

इस संक्रमण काल में अनेक सामाजि संस्थाएँ भी पैदा हो गई । इनमें से अधिकांश संस्थाओं को ऐसी समस्याएँ उठाने के लिये या तो विदेशों से धन मिलता रहा या ‘ शासन से । ये संस्थाए कहने को तो सामाजिक थी किन्तु समाज से इनका कोइ संबंध नहीं था । ये अपना सम्पूर्ण दर्शन तथा मार्गदर्शन भारत ‘ शासन या विदेशों से प्रापत करती रहीं । ऐसी वित्त पोषित संस्थाएँ भी समाज में जाल की तरह फैल गई । इन्होन भी समाज के सामाजिक अधिकारो में ‘ शासकीय हस्तक्षेप को खूब प्रोत्साहित किया । ‘ शायद ही किसी संस्था ने समाज को कभी भी मजबूत और संगठित करने का प्रयास किया हो । इन सबको दिन रात समाज में तो बुराई ही बुराई नजर आती थी और ‘ शासन में अच्छाई ही अच्छाई । ‘ शासन में फलता भ्रष्टाचार, स्वार्थ, भाइ भतीजावाद, अपराध कृति , अनैतिकता के समक्ष इन्हें मद्यपान , बंधुआ मजदूरी, दहेज, बाल विवाह, परिवारों में महिला असमानता , पशु अत्याचार आदि अधिक गंभीर समस्याएँ दिखीं और उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के नाम पर ‘ शासकीय कानूना का समर्थन कर दिया । यदि ये लोग वास्तव में वित्त पोषित साहित्यकार या समाजसेवी नहीं है तो ये ‘ शासन के सुरक्षा और न्याय जैसे दायित्वों की दुर्गति की समीक्षा क्यों नहीं करते ? भारत में कौन नहीं जानता कि स्वतंत्रता के बाद निरंतर ही सुरक्षा और न्याय कमजोर हाता जा रहा है । सच्चाई तो यह भी है कि भारत में भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता आदि में वृद्धि का एकमात्र कारण ‘ शासन का समाज के मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप है ।

आयोडिन नमक की अनिवार्यता का सर्वोदय परिवार ने विरोध किया । अभी जम्मू कश्मीर सरकार के विवाह समारोह अपव्यय नियंत्रण कानून का भी विरोध हुआ । मैं दोनों ही विरोधों का समर्थक था और हूँ किन्तु मैं इन दोनों ही विरोधों के कारणों से सहमत नहीं । नमक का विरोध इस नाम पर हुआ कि आयोडिन ‘ शरीर के लिये अनावश्यक भी है और हानिकारक भी । मैं चाहता था कि मैं कैसा नमक खाउँ इसका निर्णय ‘ शासन पर छोड़ना उचित नही । विशेषकर उस ‘ शासन पर तो ऐसा दायित्व छोड़ना बिल्कुल ही गलत है जो स्वयं आकंठ भ्रष्टाचार में डूबा है , जिसमें उपर से नीचे तक पक्षपात भरा हुआ है तथा जिसकी जनकल्याण की अनेक नीतियॉ भी विदेशी दबाव से बनती है । इसीलिये नमक आंदोलन का ऐसा स्वरू नहीं बना अन्यथा नमक आंदोलन के बाद तो ऐसे अनेक आंदोलन ‘ शुरू हो गये होते । हमारी मध्यप्रदेश सरकार ने खुला सरसों तेल खरीदकर खाने पर रोक लगाकर एक ऐसा गलत काम किया था किन्तु सवादय इसमें आगे आने से हिचक गया क्योंकि सर्वोदय का नमक आंदोलन सैद्धान्तिक मुद्दों को आगे न कर व्यावहारिक

मुद्दों को आगे करते हुए था । जम्मू कश्मीर में भी होने वाला विरोध ऐसे ही कुछ व्यावहारिक मुद्दों पर है जो प्र्याप्त नहीं किन्तु एक ठीक दिशा में ' शुरूआत है । छत्तीसगढ़ के लोकप्रिय कवि श्री मुरारीलाल जी अग्रवाल ने एक गीत लिखा है '' आधी सदी बिताई हमने लोकतंत्र के नारों से, लोकतंत्र की हत्या हो गई उसी के पहरेदारों से ''इस मामलें में खरा उतरता है । कहां बचा है लोक । अब तो लोक को तंत्र ने समाप्त कर दिया है । आज भारत का हर आदमी पुलिस से भयभीत है क्योंकि उसके नितान्त निजी और पारिवारिक जीवन में भी हस्तक्षेप का कानूनी अधिकार पुलिस के पास ह । अब इस भ्रष्ट शासकीय व्यवस्था के पंख कतरने का समय आ गया है । हम उस ' शासन को समाज की किसी भी और कैसी भी बुराई में हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दे सकते जो हमें सुरक्षा और न्याय देने में समर्थ न हो , जो स्वयं भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद , विदेशी दबाव, या अपराधियों के प्रभाव से दूर न हो । हम भले अपनी ही सामाजिक समस्या से परेशान क्यों न हों किन्तु हम अपनी समस्या के समाधान के लिये ऐसे आचरणहीनों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकते । समाज हित के नाम पर ऐसे ' शासन के हाथ मजबूत करने वाले साहित्यकार और समाजसेवी संस्थाएँ, चाहे वे वित्त पोषित हों या भ्रम के कारण, हमें सतर्क रहना चाहिये । समाज को ' शासन से एक ही निवेदन करना चाहिये कि ''मुझे तुमसे कुछ भी न चाहिये, मुझे मेरे हाल पै छोड़ दो ।''अन्यथा अब यह समाज कहने को मजबूर हो जायेगा '' अब तक हमने बहुत सहा, अब सहेंगे नहीं, हम चुप रहेंगे नहीं, पर्दा उठा देंगे हम, सब कुछ मिटा देंगे हम ।''

---

*जम्मू कश्मीर शासन का विवाह खर्च नियंत्रण कानून देश की उन निकम्मी सरकारों के प्रयासों की ही एक कड़ी था जो न्याय व सुरक्षा देने के अपने बुनियादी दायित्व से जनता का ध्यान हटाने के लिए नाना प्रकार के शिगुफे छेड़ती रहती हैं । वे ऐसे कर पेशेवर साहित्यकारों , समाज सेवियों व बुद्धिजीवियों से प्रशंसा बटोरती रहती है । नमक कानून के बाद यह पहली बार है, जब किसी ऐसे कानून का विरोध हुआ है , जिसमें शासन ने अपनी सारी सीमाएँल ांधकर समाज के मामलों में हस्तक्षेप का प्रयास किया ।*

---

## भारतीय लोकतंत्र और अटल बिहारी बाजपेयी

लोक सभा चुनाव सम्पन्न हुए । भारत के किसी व्यक्ति को ऐसे परिणामों का पूर्वानुमान नहीं था । मैं स्वयं इस बारे में बहुत अनुभवी और जानकार माना जाता हूँ किन्तु मुझे भी नब्बे प्रतिशत तक उम्मीद थी कि राजग पूर्ण बहुमत प्राप्त करेगा । अटल जी के प्रधानमंत्री बनने में ता मुझे एक पैसा संदेह नहीं था । पूरी दुनियॉ के लोग आश्यर्च चकित हैं । न कहीं कोई हवा बही न भूकम्प आया और राजग चारों खाने चित्त नजर आया । सब लोग कारणों पर विश्लेषण कर रहे हैं किन्तु चुनाव बाद भी कोइ कारण समझ में नहीं आ रहा । सिर्फ कुछ सामान्य से कारणों तक ध्यान जा पाता है । मैंने भी ऐसे ही अन्धेरे में टटोल टटोलकर कुछ कारणों पर विचार किया है । हो सकता है कि ये कारण भविष्य के लिये उपयोगी हों ।

भारतीय संस्कृति दुनियॉ की किसी भी अन्य संस्कृति से अलग है। यहॉ के अधिकांश लोग भावना प्रधान है । नीर क्षीर विवके का अभाव है । इनका कोई न कोई श्रद्धा केन्द्र अवश्य होता है । इनकी सांसारिक श्रद्धा का केन्द्र गुरू और व्यवस्था का श्रद्धा केन्द्र राजा हुआ करता था । स्वयं सोचने या निष्कर्ष निकालने का न इनका स्वभाव होता है न ही आवश्यकता । जन्म से ही तर्क से य लगभग दूर रहते हैं । भावना प्रधान संस्कृति होने के कारण ही भारत में स्वतंत्रता के पचपन वर्ष बीतने के बाद भी राजाओं या उनकी सन्तानों के प्रति आज भी जनमानस में भारी सम्मान का भाव है ।

स्वतंत्रता के बाद उम्मीद थी कि भारत में भावना प्रधान संस्कृति में कुछ कभी आकर वैचारिक संस्कृति मजबूत होगी । आर्य समाज ने अकेले ही इस दिशा में कछ प्रयास किये किन्तु वह थक गया । धर्म गुरूओं ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थो से भावना प्रधान संस्कृति को लगातार मजबूत किया । राजनीति ने भी भारत को इस संस्कृति से उबारने का कोई प्रयास नहीं किया । नेहरू जी के समय तो कुछ इसकी संभावना भी थी किन्तु शास्त्री जी के बाद लगातार व्यक्ति पूजा का महत्व दिया गया । विचार क्षमता के आधार पर श्रद्धा के उचित मार्ग को छोड़कर पहले श्रद्धा स्थापित की गई और तब विचार क्षमता पैदा की गई । नेहरू परिवार ने इस प्रवृत्ति को खूब हवा दी और उसका लाभ भी उठाया । यदि हम यह तर्क भी मान लें कि परिवार के सदस्यों में पारिवारिक व्यवसाय की योग्यता भी औरों की अपेक्षा अधिक होती है और पैतृक गुण अवगुण भी । अतः इंदिरा जी में दोनों गुण स्वभाविक थे किन्तु इन्दिरा जी के बाद राजीव में तो वह गुण था ही नहीं और सोनिया जी में तो दोनों गुण बिल्कुल भी नहीं थे क्योंकि बहू में पैतृक गुण नेहरू परिवार के नहीं हो सकते और पारिवारिक व्यवसाय का अनुभव भी उनका राजीव गांधी के साथ बहुत अल्प काल का था । इस तरह भारतीय राजनीति में भी निरंतर भावनाओं को ले आगे रखकर आम जनता की वैचारिक क्षमता वृद्धि को निरूत्साहित किया गया ।

संघ परिवार ने व्यक्ति पूजा के स्थान पर भावनात्मक मुद्दों को केन्द्र में रखकर राजनीति ' शुरू की । किन्तु संघ परिवार ने भी समाज को वैचारिक क्षमता बढ़ाने का कोई प्रयास नहीं किया और भावनाओं का ही लाभ उठाने का प्रयास करता रहा । साम्यवादी तो प्रारंभ से ही इसी दिशा में काम करते रहने के लिये विख्यात है । समाजवादियों ने अवश्य ही व्यक्तिपूजा या भावनात्मक मुद्दों को उभारने की अपेक्षा कुछ वैचारिक बहस को बढ़ाने को पहल की , जिसके दुष्परिणाम वे आज तक भुगत रहे हैं कि दो समाजवादी कभी भी एक साथ नहीं रह सकते जैसी कहावत नके लिए आम हो गई है ।

व्यक्ति पूजा, भावना की प्रधानता तथा निर्विवाद श्रद्धा केन्द्र निर्माण भारतीय जनमानस का संस्कार बन चुका है । भारतीय जनमानस की इस कमजोरी को भारतीय राजनीति से जुड़े सब लोग अच्छी तरह समझते हैं । अतः समाजवादियों को छोड़कर एक भी ऐसा राजनीति दल नहीं है जिसमें सर्वोच्च सत्ता केन्द्र के निर्णय को आंख मूँदकर चापलूसी की सीमा तक प्रशंसा करने की परिपाटी न हो । इस भारतीय राजनीति में वही, और केवल वही दल उभर सकता है जो समय समय पर भावनात्मक मुद्दे उभार सकता हो तथा जिसका अन्तिम श्रद्धा केन्द्र सिर्फ एक ही हो, भले ही वह अक्षम ही क्यों न हो ।

संघ परिवार कूटनीति जानता है और सत्ता उसका लक्ष्य है । अटल जी कूटनीतिज्ञ नहीं हैं । सत्ता उनका लक्ष्य न होकर कुछ कर गुजरने का माध्यम है । अटल जी ने भारत की भावना प्रधान संस्कृति को समझते हुए भी भावनात्मक मुद्दे उठाने से परहेज किया । पूरे पांच वर्षो तक संघ परिवार और अटल जी में कभी ऐसा समझौता नहीं हुआ कि अटल जी एक श्रद्धाकेन्द्र के रूप में उभर सकें । संघ परिवार और अटल जी के बीच कई बार युद्ध विराम हुआ और कई बार टूटा किन्तु न कभी संघ परिवार अटल जी के समक्ष समर्पित हुआ

और न ही अटल जी संघ नीति से सहमत हुए । सम्पूर्ण भारत में बडो संख्या में प्रतिबद्ध मतदाता हैं जो तटस्थ मतदाताओं को अपने पक्ष में मतदान हेतु प्रेरित करते हैं । संघ परिवार स्वयं में एक बहुत बड़ी ताकत है । अटल जी तटस्थ मतदाताओं के बीच बहुत लोकप्रिय हैं । जब ये दोनों शक्तियॉ दिल से एक होती है तब एक शक्ति बन जाती हैं अन्यथा ये अलग–अलग सोच रखकर कमजोर हो जाते हैं । वर्तमान पांच वर्षो मं से साढ़े चार वर्ष तो दोनों की दुकानें अलग–अलग रहीं और अन्तिम छह माह में संघ ने मजबूरी में अटल जी को छूट दी । अटल जी का सम्मान तटस्थ लोगों में चरम पर था किन्तु अटल जी संघ परिवार के श्रद्धा केन्द्र नहीं बन सके । दूसरी ओर अटल जी ने भावनात्मक मुद्दों को पूरी तरह छोड़कर भी खतरा मोल लिया । धर्म एक भावनात्मक मुद्दा है । भारत के धर्म निरपेक्ष लोग मुस्लिम परस्त हैं, यह बात आम भारतीयों के मन में घर कर चुकी है । कांगेस भी धर्मनिरपेक्ष मोर्चा बनाकर जाल में फंस गई थी । अटल जी यदि नरेन्द्र मोदी की भाषा में भले ही आगे नहों आते किन्तु उन्हें धर्म के नाम पर चुनावों के समीकरण बनने देना चाहिये था । राजनैतिक ध्रुवीकरण वास्तविक धर्मनिरपेक्षता और छद्म धर्मनिरपेक्षता के बीच कराना उचित था किन्तु अटल जी ने भावनात्मक मुद्दां को पीछे ढकेलकर वैचारिक बहस पैदा करने का प्रयास किया और राजनैतिक शहीद हो गये । मैं मानता हूँ कि अटल जी का प्रयास समाज के लिये बहुत हितकारी था किन्तु सत्ता के हिसाब से वह घातक सिद्ध हुआ । अटल जी के प्रयास भारतीय राजनीति में लम्बे समय तक सराहे जायेगे किन्तु भाजपा की असफलता का कलंक तो उनपर उसी प्रकार लगा रहेगा, जैसे गोर्बाचोव पर रूस साम्राज्य के विघटन का ।

ठीक से विश्लेषण करने पर भा.ज.पा. की असफलता के चार कारण हो सकते है :–

1. भारत का आम मतदाता व्यक्ति पूजक है । सभी राजनैतिक दलों ने अपना अपना श्रद्धा केन्द्र स्थापित किया । कांग्रेस तो इस संबंध में इतना आगे निकल गई कि उसने एक परिवार को ही अपनी आस्था का केन्द्र मान लिया किन्तु भा.ज.पा. का कोई एक आस्था का कन्द्र नहीं बन सका । अटल जी के अतिरिक्त किसी अन्य को भारत की जनता मानने कोतैयार नहीं थी और अटल जी के समक्ष संघ परिवार आत्म समर्पण हेतु तैयार नहीं था ।
2. भारत का आम मतदाता भावना प्रधान है । स्वतंत्रता से लेकर अब तक के चुनाव किसी न किसी भावनात्मक मुद्दे को आगे कर लड़े गये । इस चुनाव में अटल जी ने इस बीमारी से भारत को सदा–सदा के लिये मुक्त कराने की पहल की । भारतीय चुनाव के इतिहास में यह पहला मौका था जब चुनावों का कोई मुद्दा नहीं था । भारतीय जनता पार्टी के लिये हिन्दुत्व एक सर्वाधिक सहज सुलभ मुद्दा उपलब्ध था किन्तु अटल जी की आदर्श प्रधान जिद ने हिन्दुत्व को मुद्दा नहीं बनने दिया ।
3. भारत का आम नागरिक धर्म निरपेक्ष प्रवृत्ति का है । अधिकांश मुसलमानों और संघ परिवार को किनारे कर देखें तो जैन, बौद्ध, इसाई, सिख भी धर्म के आक्रमण स्वरूप के पक्ष में नहीं हैं हिन्दू तो कभी हैं ही नहीं । आम भारतीयों की इस प्रवृत्ति का कांग्रेस सहित अनेक राजनैतिक दलों ने भरपूर लाभ उठाया और स्वयं को धर्म निरपेक्ष घोषित कर मुस्लिम तुष्टीकरण का कार्य किया । संघ परिवार ने भारतीय जनमानस को मुस्लिम साम्प्रदायिकता से हटाकर हिन्दू साम्प्रदायिकता की ओर मोड़ने का भरसक प्रयास किया । भारत का आम हिन्दू साम्प्रदायिक तो नहीं हुआ किन्तु वह कांगेस सहित अनेक अन्य छद्म धर्मनिरपेक्षों की मुस्लिम तुष्टिकरण नीति को गहराई से समझने लगा । इस चुनाव में अटल जी से उम्मीद थी कि वे वास्तविक धर्म निरपेक्षता को प्रात्साहित करेंगे ओर चुनाव पूर्व तक वे ठीक दिशा में चल भी रहे थे किन्तु चुनावों के ठीक पहले अटल जी ने मुस्लिम मतों को अपनी ओर मोडक्ने के उद्धेश्य से या और अधिक धर्मनिपरपेद्वक्ष बनने की होड में मुसलसमानों की वैसी ही चापलूसी शुरू कर दी, जैसी कांगेस आदि छद्म धर्मनिरपेक्ष दल करते रहे हैं । इस नीति परिवर्तन से उनकी प्रशंसा तो खूब हुई किन्तु सारे राजनैतिक समीकरण बदल गये । कुल मिलाकर शायद ही एक प्रतिशत मुसलमानों ने भा.ज.पा. के पक्ष में वोट दिया हो किन्तु भा.ज.पा. का प्रतिबद्ध वोटर उत्साहहीन हो गया । सब जानते हैं कि राजनैतिक दलों के प्रतिबद्ध मतदाता ही तटस्थ मतदाताओं के वोट दिलवाने का काम करते हैं । अटल जी की सहृदयता ने तटस्थ मतदाताओं को अपनी ओर आकर्षित तो खूब किया किन्तु वह प्रतिबद्ध मतदाताओं की उत्साहहीनता के कारण या तो धर बैठा रह गया या अन्य दलों के प्रतिबद्ध मतदाताओं के अहकावे में आ गया । मैं आज तक नहीं समण सका कि जो अटल बिहारी संघ की साम्प्रदायिकता से निरंतर संघर्ष करते रहे, वहीं कैसे मुस्लिम स्प्रदायिकता से धोखा खा गये? क्या वे नहीं जानते थे कि दुनिया में मुसलमान धर्म के मामले में सर्वाधिक संगठित, कट्टर और चालोक होते हैं । वह ईराक पर अमेरिका के आक्रमण के समय तो संगइित विरोध प्रकट करते हैं किन्तु इराक द्वारा किसी अन्य मुस्लिम राष्ट्र कुवैत पर आक्रमण के समय चुप हो जाते हैं । ऐसे चालाक समुदाय के धोखें में आकर अटल जी ने अपनी धर्मनिरपेक्षता को संदिग्ध बना दिया । परिणाम स्वरूप उन्हें मुसलमानों का तो वोट नगण्य ही मिल सका पर संघ परिवार को निष्क्रिय अवश्य कर गया ।
4. आडवाणी जी ने परिस्थिति को समझकर एक फीलगुड का भावनात्मक मुद्दा हवा में उछाला । यद्यपि भारत में 1. चोरी डकैती2. बलात्कार3. मिलावट 4. जालसाजी 5. हिंसा और आतंक 6. भ्रष्टाचार 7. चरित्र पतन 8. साम्प्रदायिकता एवं 9. जातीय कटुता, इन नौ समस्याओं के होते हुये कसे फीलगुड महसूस करती ? इन नौ समस्याओं में लगातार वृद्धि ही हुई है तो जनता इन सब समस्याओं मे से अटल जी के कार्यकाल में किसी एक भी समस्या की वृद्धि द पिछले किसी भी 'शासन की अपेक्षा कम नहीं हुई, घटने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । फिर भी यह सौभाग्य है कि किसी राजनैतिक दल ने फीलगुड के नारे को इस तराजू पर नहीं तौला और फीलगुड आर्थिक मुद्दे तक सीमित रह गया, जैसा कि आडवाणी जी चाहते थे । पिछले पांच वर्षो की अर्थनीति ने संपूर्ण भारत के समस्त रहन–सहन को प्रभावित किया । भारत तीव्र गति से विकास की ओर भी बढ़ा किन्तु मुख्य प्रश्न यह रहा कि वर्तमान आर्थिक विकास से आर्थिक विषमता बढ़ी कि घटी और भारत में श्रम का मूल्य कितना बढ़ा ? न तो आर्थिक असमानता घटी, न श्रम की मांग बढ़ी । भारत के सभी राजनैतिक दल, जिनमें वामपंथी मुख्य रूप से शामिल हैं श्रम का वास्तविक मूल्य कभी नहीं बढ़ने देते और इसके लिये परोक्ष रूप से कृत्रिम ऊर्जा को श्रम सहायक घोषित ओर प्रचारित कर उसकी मूल्य वृद्धि को रोककर रखते हैं । ऐसा करने से उन्हें श्रमजीतियों और गरीबों के मन में आर्थिक असंतोष जीवित रखने में सहायता मिलती है । भा.ज.पा. की सरकार ने भी जिस तरह मुस्लिम तुष्टिकरण की पोल खोलने की पहल नहीं की और वह भी कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि से निरंतर बचती रही । यहॉ तक कि चुनावों के अन्तिम छह महीनों में तो उसने कृत्रिम ऊर्जा की स्वाभाविक मूल्य वृद्धि को भी रोक दिया । इस कारण आर्थिक असमानता भी बढ़ती गई और श्रम की मांग में भी कमी आती गई । श्रमिक बेरोजगार होते रहे और शेष भारत फीलगुड महसूस करे, तब ऐसे हालात में सब जगह तो श्रमिक कुछ नहीं कर सकता किन्तु मतदान के समय उसकी भावना को चोट लगती ही है । नकली श्रम जीवियों ने वास्तविक श्रम जीवियों की इस भावना को खूब उभारा और उस वोट में बदल लिया । यदि फीलगुड को चुनावी मुद्दा नहीं बनाया जाता तो श्रम असंतोष भी चर्चा का मुद्दा नहीं बनता ।

मेरे विचार में ये चार प्रमुख कारण हैं, जिनसे अटल जी राजनीति मेंपिछड़ गये । विचारणीय यह भी है कि अटल जी को क्या करना चाहिये था या यदि उनकी जगह मैं होता तो क्या करता?

संघ परिवार की दो आपत्तियों ने भाजपा में दो ध्रुव बनाये1. मुस्लिम तुष्टिकरण 2. आर्थिक उदारीकरण । मैं यह मानता हूॅं कि कोई भी समझदार आदमी संघ परिवार की इन दोनों अतिवादी मांगा के समक्ष झुक नहीं सकता । मुस्लिम तुष्टीकरण के नाम पर संघ जिस तरह इस्लाम को इस्लामिक तरीके से आकमण कर परास्त करना चाहता है, वह पूरी तरह मानवता के वि☺ है । सी तरह संघ परिवार स्वदेशी को , जिस रूप में ग्रहण करना चाहता‟, वह भी नामुमकिन है किन्तु छद्‌म धर्मनिरपेक्षता की जगह वास्तविक धर्मनिरपेक्षता को अपनाकर, उनसे समझौता तो हो सकता ाि । किसयी भी हालत में दो ध्रुव तो नहीं ही बनने थे । या तो किसी तरह समझौता करना था या एक अलग दल बनाकर अन्य सहयोगी दलों की भूमिका के समान होना था । इससे दो ध्रुव भी नहों बनते औरी मुस्लिम मत भी अटल जी बड़ी संख्या में ले लेते । यदि मैं होता तो समान नागरिक संहिता और धर्म परिवर्तन कराने पर आंशिक प्रतिबअंध का भावनात्मक नारा हाथ में लेकर संघ परिवार से समझौता कर लेता और कांग्रेस सहित सभी दलों की धर्मनिरपेक्षता को कटघरे में खड़ा कर देता । इसी तरह मैं अर्थ शास्त्रियों की पूरी टीम बदलकर अपनी`सी टीम बनाता जो उदारीकरण का लाभ श्रम की मांग के साथ जोड़ती अर्थात्‌ कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करता । इसे बहस का मुद्‌दा बनाने के लिये पहले कदम के रूप में एकाएक साइकिल और दवा पर से सारा टैक्स हटा कर कृत्रिम ऊर्जा पर उतना ही कर जोड़कर लगा देता । विदित हो कि भारत में साइकिल पर करीब 250 रूपये प्रति सायकिल टैक्स है और दवा पर भी भारी कर हे । यदि आवश्यक होता तो साइकिल को कुछ और छूट देकर ऐसी स्थिति पैदा करता कि एकाएक बहस का भ्‌चाल खड़ा हो जाता और तब आर्थिक उदारीकरण का मानवीय चेहरा सामने आता ।

मैं जानता हूॅं कि कांग्रेस पार्टी भी इन दोनों मुद्‌दों पर पीछे ही जायेगी । वह जितना ही छद्‌म धर्मनिरपेक्षता के मार्ग पर चलेगी, उतना ही संघ परिवार मजबूत होगा । आर्थिक नीतियों में भी कांग्रेस कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि तो करेगी नहीं और जब तक ऐसा नहीं होगा जब तक श्रम की मांग भी घटेगी और मूल्य भी घटेगा । या तो उदारीकरण की नीति यथावत चलती रहेगी या उदारीकरण को कम कर नकली श्रमिकों के चेहरे को ही मानवीय चेहरा घोषित करके उनके चेहरे पर चमक लौटाने का प्रयास होगा । दोनों ही स्थितियां वास्तविक श्रमिकों के हित में नहीं हैं । या तो अटल जी को भावनात्मक विचारों को काबू में करके वैचारिक धरातल पर अपनी नीतियॉ बनानी चाहिये । अन्यथा अपनी पारी समाप्त घोषित कर समाज को अपनी नई राह बनाने के लिए सोचने का अवसर देना चाहिये ।

## प्रश्नोत्तर

### 1. श्री रणछोड़ दास गट्‌टानी, जोधपुर, राजस्थान

प्रश्न— आपसे मेरा प्रश्न था कि आपका यह लिखना सत्य नहीं लगता कि भारत क प्रदेश अैर केन्द्र सरकारों के कुल बजट का सिर्फ एक प्रतिशत ही पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है । मेरे प्रश्न के उत्तर में आपने लिखा कि केन्द्र सरकार तो पुलिस और न्यायालय पर नगण्य ही खर्च करती है । प्रदेश सरकार का कुल खर्च यदि दो प्रतिशत भी हो तो कुल बजट का एक प्रतिशत ही हुआ ।मैं जानना चाहता हूॅं कियदि केन्द्र सरकार पुलिस और न्यायालय पर कोई खर्च नहीं करती तो सुप्रीम कोर्ट या सीमा सुरक्षा बल या सी.बी.आई आदि का खर्च कौन उठाता है? आपके पत्र को पढ़कर लगा कि आगे पत्र पढ़ना बेकार की कसतर है ।

उत्तरः— मैंने लिखा है कि कुल बजट का एक प्रतिशत ही पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है । इस तथ्य के उद्‌धाटन पर कई लोग चौंक गये । कई पत्र आये । तर्क दिये गये और विरोध हुआ किन्तु किसी मित्र ने इस तथ्य के विपरीत यह आंकड़ा प्रस्तुत नहीं किया कि भारत के संपूर्ण बजट में पुलिस और न्यायालय का कितना हिस्सा है और प्रदेश सरकारों के बजट म कितना ? किसी एक प्रदेश के आंकड़े पर्याप्त हैं क्योंकि यदि फर्क भी होगा तो प्रतिशत में ज्यादा अन्तर नहीं आयेगा । जब भारत के आम लोग जानते हैं कि केन्द्र सरकार अपने बजट का तेरह प्रतिशत सेना पर पांच प्रतिशत शिक्षा पर, तीन चार प्रतिशत कृषि पर खर्च करती है तो इसी तरह कोई आन्तरिक सुरक्षा और न्याय पर खर्च का आंकड़ा भेज देता तो मैं अपने कथन में सुधार कर लेता ।

मेरी जानकारी में न्यायालय का खर्च प्रदेशों का है । यदि केन्द्र का है तो प्रदेशों में सिर्फ पुलिस का खर्च है जो उसके बजट का दा प्रतिशत नहीं है। आप विद्वान हैं और हम लोग खेज करने वाले । मैं अपने कथन को अन्तिम नहीं मान रहा किन्तु आपके कथन को दबाव बश मान लूॅं, यह संभव नहीं । आशा है कि पाठक गण हवा में लाठी चलाने की अपेक्षा कुछ तथ्य प्रस्तुत करेंगे तो मुझे अपने विचार संशोधित करने में सुविधा होगी ।

### 2. श्री रामशरण अग्निहोत्री, गांधीनगर, गुजरात ।

**प्रश्न**—मैं वैचारिक आधार पर आपका बअहुत प्रशंसक हूॅं भारत के अनेक विद्वानों के विचार सुनने ओर पढ़ने का अवसर मिलता रहता है । आपके विचार बहुत संतुलित, संक्षिप्त तथा अर्थ पूर्ण होत हैं । मैं दो तीन वर्षो से आपसे वैचारिक रूप से परिचित हूॅं, यद्यपि न कभी भेंट हुई है, न आपके विषय में कोई अनुमान है । मुझे आश्चर्य होता है कि इतने गंभीर विचारों के बाद भी मैंने न आपका नाम भारत के साहित्यकारों की सूची में देखा, न ही विचारकों की सूची में । क्या कारण है ?

मुझे आज तक आपके विचारों पर कलम चलाने की कभी आवश्यकता महसूस नहीं हुई किन्तु पिछले ज्ञानतत्व मे आपके सतीप्रथा , बालविवाह, आदि सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध आन्दोलन करने वाले राममोहन जी राय या ब्रम्हा समाज के विषय में कुछ विपरीत टिप्पणी कर मुझे दुख पहॅुचाया है ।

सच मानिये कि मैं इनका प्रशंसक हूॅ सती प्रथा व बाल विवाह आदि कुरीतियों का घोर विरोधी हूॅ मैं तो पूरी तरह विधवा विवाह का भ पक्षधर हूॅ । आप एकबार और स्पष्ट करें कि ब्रम्हा समाज या राममोहन राय आदि ने हिन्दू धम की इन कुरीतियो के विरूद्ध आवाज उठाकर क्या भूल की ?

उत्तरः–भारत में विचारक और साहित्यकार दो भागों में बंटे हुए है 1. प्रगतिशील 2. राष्ट्रवादी । ये लोग जो भी विचार देते हैं या साहित्य सृजन करते हैं, वह पूरी तरह प्रतिबद्ध होता है । ये विचारक अलग अलग संगठन बना लेते हैं । ये विचारक या साहितत्यकार तर्क के माध्यम से कोइ निष्कर्ष नहीं निकालते बल्कि निकले हुए निष्कर्ष को तर्क का आधार देने में लगे रहते हैं । इनमें से कोइ भी विचयारक या साहित्यकार यथार्थवादी नहीं है । जो कुछ थोड़े से यथार्थवादी हैं, उनका न कोई संगठन है न कोई पहचान क्योंकि प्रतिबद्ध लोगों को तो राजनैतिक समर्थन भी मिलता है किनतु यथार्थवादियों को कोई पुछने वाला नहीं । मैं कोई साहित्यकार नहीं सिर्फ एक विचारक मात्र हूॅ । मैंने यथार्थवाद का मजबूत किया है । मैंने निष्कर्ष निकाले है , लम्बे समय तक वैचारिक तपस्या की है । मैंने जो निष्कर्ष पर भिन्न विचार वाले लोगों से विचार मंथन के लिये लालायित रहता हूॅ किन्तु प्रगतिशील और राष्ट्रवादी विचारक मेरे इस प्रयास को अपन प्रतिबद्ध वैचारिक धरातल के लिये बाधक समझते हैं । यही कारण है कि मेरा नाम भारत के छोटे से छोटे विचारकों की श्रेणी में भी शामिल नहीं है। स्वाभाविक है कि आप जैसे अनेक लोगों ने मेरा नाम न सुना हो ।

मैं मानता हूॅ कि सत्तो प्रथा या बालविवाह का अस्तित्व समाज के लिये कलंक है । मैं जीवन भर विधवा विवाह का समर्थक रहा हूॅ । मैंने जीवन भर इन कुरीतियों के विरूद्ध संघर्षकिया है किन्तू मैंने हमेशा इन कुरीतियों को सामाजिक बुराई मा माना है , जिन्हें दूर करने के लिये सामाजिक जागृति की आवश्कता है । उक्त बुराइयों को दूर करने के लिये कानूनी, प्रशासनिक अथवा शासकीय हस्तक्षेप, इन बुराइयों की अपेक्षा कइ गुना अधिक घातक बुराई है । इससे समाज में पुलिस का हस्तक्षेप बढ़ता है तथा राजनेताओं को भी समाज में हस्तक्षेप के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं । कुल मिलाकर इससे समाज कमजोर होता है ।

ब्रह्मा समाज, राजा राममोहनराय अथवा कुछ अन्रूप समकालीन समाज सुधारकों ने समाज सुधार के नाम पर प्रशासन और राजनेताओं को इस कार्य के लिय आमंत्रित कर समाज का बहुत बड़ा नुकसान किया है । इसके पूर्व प्रशासन कभी समाज के सामाजिक कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करता था और स्वयं को समाज विरोधी तत्व नियंत्रण तक सीमित रखता था ।इन समाज सुधारकों ने सती प्रथा व बालविवाह, आदि सामाजिक कुरीतियों के संबंध में सामाजिक जागृति का लम्बा और कठिन मार्ग न अपनाकर कानून के सहारे का जो छोटा माग्र अपनाया, उसने प्रशासन द्वारा समाज के सामाजिक कार्यो में हस्तक्षेप के बन्द दरवाजे सदा सदा के लिये खोल दिये । उसके बाद तो अनेक समाज सुधारक ऐसी भूल करने लगे और यहॉ तक कि गांधी जी भी छुआछुत निवारण या शराब बंदी के लिये कानून बनाने का समर्थन कर बैठे ।मेरे विचार में बाद में जो भूल हुई ,उसके प्रारंभ को दोष ब्रह्मा समाज तथा राजाराममोहनराय का माना जाना चाहिये । उनकी जल्दबाजी तथा अदूरदर्शी पहल ने समाज की ऐसी अपूर्णनीय क्षति की है कि अब तो प्रत्येक सामाजिक कुरीति, को दूर करने के लिये कानून बनाने की मांग करने वालों की समाज में बाढ़ सी आ गई है ।

एक मई से भारत सरकार ने सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान रोकने का कानून बनाकर एक और सामाजिक तथा अस्वास्थ्यकर बुराइ को दूर करने का दायित्व स्वीकार किया है । अनेक तथाकथित समाज सुधारकों और विद्वाों ने सरकार के इस कदम की भूरि भूरि प्रशंसा की है । पूरे भारत ने अप्रैल ओर मइ माह के राष्ट्रीय घटनाकम को देखा है । भारत में राजनेताओं और राजनैतिक दलों का चरित्र पतन भी देखा है । भारतीय प्रशासन आम भारतीयों को भयमुक्त मतदान तक की व्यवस्था नहीं कर सका । भारत की संभावित प्रधानमंत्री सोनिया गांधी ने यह कह कर प्रधानमंखी बनने से इन्कार कर दिया कि उनकी सन्तान ऐसे भयग्रस्त यवातावरण में अब और खतरा उठाने के लिये तैयार नहीं जो उनके पिता और दादी मां की सुरक्ष तक न कर सकें । पूरे भारत में असरुश्रखा और अन्याय का वातावरण प्रतिवर्ष लगभग दस से पंद्रह प्रतिशत तक बढ़ रहा है । ऐसे नपुसंक सिद्ध प्रशासन द्वारा धूम्रपान निषेध का एक और दायित्व लेने और ऐसे दायित्व लेने की प्रशंसा करने वालों को कितना विचारक और समाजसेवी कहा जाय, यह भी विचारणीय मुद्दा है । वर्तमान में समाज और शासन के बीच जो असंतुलन बना है, उसका सारा दोष राजा राममोहन राय और ब्रह्मासमाज को देना चाहिये , जिन्होंने समाज सुधार की जल्दबाजी में प्रशासन को समाज पर हावी होने का अवसर प्रदान किया ।

आप ब्रह्मासमाज और राजा राममोहनदाय के प्रशंसक हैं । मैं भी उनकी भावना की कद्र करता हूॅ । उन्होंने ऐसा कभी नहीं सोचा होगा कि धीरे–धीरे प्रशासन सम्पूर्ण समाज व्यवस्था को ही निगल लेगा किन्तु उनसे भूल हूई है, यह बात सच है और अब हमारा कर्तव्य हे कि उनकी भूलों का परिमार्जन करें ।

## 3. श्री बधुमल शामसुखा, सफपर जंग एन्क्लेव, नयी दिल्ली

### समीक्षा

ज्ञान तत्व अंक तिहत्तर को पढ़ा । कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाये गये हैं । कानूनों की विसंगतियॉ आम आदमी की पहूॅच से तो बाहर हैं ही, उनका पालन कराने वाले भी नहीं जानते । यहॉ तक कि कई बातें तो अधिवक्ता और न्यायाधीशों की भी जानकारी से बाहर होती हैं ।

आपने पृष्ठ सोलह, सत्रह और अठारह में सहभागी लोकतंत्र की गंभीर चर्चा की है । यह चर्चा पूरे देश में व्यापक रूप से होनी ही चाहिये । जन सहभागिता की कुछ आवश्यक शर्तें होती हैं । जब तक समाज के अन्तिम आदमी से बराबरी की भूमिका में सम्वाद नहीं बनता है तब तक सहभागी लोकतंत्र कैसा आ सकता है । **Dominator** और **Dominated** के बीच की दूरी जब तक बनी रहेगी, तब तक न कोई सम्वाद संभव है न ही उसका कोई प्रभाव होगा । **Dominator** को
आप चाहे संरक्षक कहें या मैनेजर अथवा शासक को आप राजा कहें या नेता, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है । वैचारिक अनाग्रह से ही सत्याग्रह, का जन्म होता है । विचार रूढ़ता सत्य के मार्ग में अवरोधक है और जब सत्य का मार्ग ही अवरूद्ध है तो सत्याग्रह कैसे संभव है ।

आपने शोषण और उत्पीड़न मुक्त समाज की चर्चा की है । शोषण का प्रारभ ही शासन से होता है । शासन मुक्ति के विचार को किनारे कर शोषण मुक्ति संभव ही नहीं । अधिकार देने की अवधारणा अर्थहीन है क्योंकि अधिकार वंचितों को अपने अधिकार **Restore** करने होंगे अर्थात् जिन लोगों ने उनके अधिकारों का अपहरण किया हैं, उनसे वे अधिकार छुड़ाने होंगे ।

उत्तरः–आपने अपने संक्षिप्त पत्र में कई गंभीर और उपयाग बातें लिखी हैं । किसी बहुत बड़े कचरे के ढेर में कोई चीज खो जावे तो सामान्यतया वह वस्तु नहीं दिखाई देती है । खोजने का प्रयत्न करने वाले भी उसे कठिनाइ से ही खोज पाते हैं । भारत में अनावश्यक कानूनों के ढेर में कुछ आवश्यक कानूनों की वही दुर्गति हो रही है समाज के अन्तिम व्यक्ति का अर्थ गुलाम या अधिकार विहीन होना चाहिये । राजनैतिक दलों तथा अधिकांश सामाजिक संस्थाओं में भी समाज के अन्तिम व्यक्ति का अर्थ, धनहीन बताया जाता है, जबकि यह अर्थ राजनेताओं द्वारा प्रचारित किया हुआ है । भूखे किन्तु स्वतंत्र और सम्पन्न किन्तु जेल में, के बीच तुलना करते समय आम तौर पर अधिकार सम्पन्न और अधिकार विहीन शब्दों को किनारे कर अन्तिम व्यक्ति की कल्पना की जाती है जो पूरी तरह गलत हे । भूखा किन्तु स्वतंत्र व्यक्ति सम्पन्न किन्तु जेल में निरूद्ध की अपेक्षा किसी भी स्थिति में अच्छा माना जायेगा । आपने यह तथ्य ठीक से प्रस्तुत किया है ।

विचार रूढ़ता को सत्याग्रह के साथ जोउ़ते समय और अधिक विवेचना लिखिये क्योंकि सत्याग्रह एक गंभीर विषय है ं इसी तरह अधिकार मांगने की अपेक्षा अधिकार लेने को आपने अधिक महत्वपूर्ण माना है । मैं आपसे पूरी तरह सहमत होते हुए भी यह आवश्यक मानता हूँ कि अधिकार लेने की प्रकिया का प्रारंभ अधिकार मांगने से ही होना चाहिये । सीधे अधिकार लेने के प्रयास उचित नहीं हैं । आपसे उम्मीद है कि इन विषयों पर कुछ विस्तार से लिखियेगा जिससे कुछ अधिक स्पष्ट हो सके ।

## ज्ञान तत्व का प्रसाद बढ़ाने का आव्हान्

## अक्टूबर में होगा अंबिकापुर में लोक स्वराज्य समागम

प्रिंस अभिशेख अज्ञानी

लोक स्वराज्य मंच अपनी पाक्षिक पत्रिका ज्ञान तत्व की प्रसार संख्या बढ़ाने हेतु प्रयास तेज करेगा । वहीं अक्टूबर में छत्तीसगढ़ के जिला मुख्यालय अंबिकापुर (सरगुजा) में आयोजित अपने आयोजन को मंच व्यापक रूप देगा ।

यह निर्णय मंच की राष्ट्रीय कार्य समिति की दो दिवसयी बैठक में लिए गए । दिल्ली में भजनपुरा स्थित रचनात्मक कार्यकर्ता सदन में इसका आयोजन किया गया । मंच संस्थापक व रामानुजगंज (सरगुजा) नगर पंचायत अध्यक्ष श्री बजरंगलाला अग्रवाल के संयोजन में इसकी अध्यक्षता मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ0 आर्यभूषण भारद्धाज ने की । उन्होंने ज्ञान तत्व के पाठकों, सहयोगियों व शुभचिंतकों का आव्हान् किया कि वे ज्ञान तत्व की प्रसार संख्या निकट भविष्य में जल्द ही कम से कम तीन हजार तक पहुँचाने में हर सीाव योगदान दें ताकि इससे लोक स्वराज्य अभियान में वांछित गति आ सके । आपने कहा कि महज 50 रूपये वार्षिक मूल्य पर वर्ष में ज्ञान तत्व के 24 अंक देना आसान नहीं है परंतु यह सब शुभेच्छुओं के सहयोग से ही संभव हो पा रहा है ।

वहीं तीन से छह अक्टुबर (रविवार–मंगलवार)तक अंबिकापुर में आयोजित आयोजन में लोक स्वराज्य मंच ने हरेक लोक सभा क्षेत्र से कम से कम दो–दो लोगों को आमंत्रित किया है । वहॉ से छह अक्टूबर बुधवार को इच्छुकों को रामानुजगंज ले जाया जाएगा । वे मंच के भावी स्वरूप, कार्यकमों को रूपरेखा अभियान के स्वरू और अभियान की दिशा दशा तय करेंगे । इस हेतु लोक स्वराज्य मंच छग व उसके समीपस्थ राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान के प्रायः हरेक लोक सभा क्षेत्र से दो–दो प्रतिनिधियों के अंबिकापुर आने का ऑकलन कर रहा है । वहीं दिल्ली,हरियाणा व महाराष्ट्र आदि अन्य राज्यों से भी साथियों के सरगुजा पहुँचने की पूव सूचनायें आती जा रहीं हैं । इन सबके लिए भोजन व आवासादिक व्यवस्थायें मंच स्वयं करेगा । मार्गव्यय आगन्तुक खुद वहन करेंगे । हाल ही में 30 जनवरी को दिल्ली से 26 जुन अजमेर तक उत्तर मध्य भारत के जिन आठ राज्यों छग, बिहार, झारखंड, उत्तरप्रदेश राजस्थान, हरियाणा व दिल्ली के साथ म.प्र. के एकाधिक हिस्सों में जिन लोक सभा क्षेत्रों में लोक स्वराज्य यात्रा गई थी , मंच. अपने सरगुजा आयोजन हेतु उन पर खासतौर से ध्यान केंद्रित करेगा । दिल्ली बैठक में यह भी तय किया गया कि पत्र, दूरभाष, भेंट या ज्ञानतत्व आदि के माध्यम से व्यापक संपर्क कर सरगुजा आयोजन में लोक स्वराज्य के लिए कटिबद्ध साथियों को बुलाकर कार्यकम को ठोस रूप दिया जाएँ ।

इसके अलावा वरिष्ठ सर्वोदयी नेताओ के साथ बराबरी से मिलकर एक देशव्यापी हस्ताक्षर अभियान पर भी व्यापक चर्चा की गई । इसमें तीन मुद्दों 1. निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार देने 2. संविधान वर्णित नीति निर्देशक तत्वों का पालन बाध्यकारी किए जाने और 3. संविधान में वर्णित अधिकारों की विभाजन सूची में केंद्रीय, प्रादेशिक व समवर्ती सूचियों के अलावा स्थानीय संस्थाओं के अधिकारों की पृथक सूची जोड़ने को लेकर संविधान संशोधन कर वैधानिक व्यवस्था किए जाने पर एक करोड़ हस्ताक्षर कराए जाना समाहित है ं ।

दिल्ली बैठक में मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्षत्रय सवश्री अखिलेश आर्येदु (दिल्ली), बहादुर सिंह यादव(उ0प्र0)व अरपित अनाम (हरियाणा),राष्ट्रीय प्रवक्ता प्रिंस अभिशेख अज्ञानी, दिल्ली राज्य संयोजक ओमप्रकाश दुबे, सह संयोजक सुनील एक्का, डॉ0 गीतांजति , सह राज्य प्रमुख चौधरी अमर सिंह आर्य (राजस्थान),एवं बाबूराम सैनिक (हरियाणा),आदि मुख्य रूप से उपस्थित थे । श्रीमति भारद्वाज, डॉ0 कपिल भार्गव, अंसार अली, पत्रकार वेदप्रकाश शर्मा, मो0 नाजिम, अनिल रंजन तथा राजीव शर्मा ने व्यवस्था में सहयोग दिया ।

शिविर सम्मेलन चर्चा

1. अंबिकापुर सम्मेलन तीन, चार पांच अक्टूबर को अम्बिकापुर में होगा ।
2. अंबिकापुर पहुँचने हेतू

(क) झारखंड के गढ़वा रोड स्टेशन से सीधी बस रामानुजगंज होते हुए अंबिकापुर । दूरी 170 कि.मी.

(ख) सरगुजा के बिश्रामपुर स्टेशन से जीप द्वारा अं.पुर दूरी 25 कि.मी.
(ग) वाराणसी से सीधी बस से अंबिकापुर दूरी 325 कि.मी.
(ध) बिलासपुर से सीधी बस दूरी 230 कि.मी.

3.अंबिकापुर में निवास तथा भोजन की व्यवस्था हमारी रहेगी ।
4.छः अक्टूबर को रामानुजगंज शहर और वहॉ की व्यवस्था देखने का अवसर होगा । आने जाने की व्यवस्था हमारी रहेगी ।
5.पांच अक्टूबर को दोपहर में सरगुजा जिले के विचारकों का भी सम्मेलन तथा आम सभा होगी ।

6.इस संबंध में और विवरण अगले किसी ज्ञान तत्व में आयेगा ।
7.सम्मेलन सबके लिये खुला है । कितने भी साथी आ सकते हैं ।

'' पद से दूर रहें सोनिया जी ''

## दो साल पहले श्री बजरंगलाल की सलाह

**प्रिंस अभिशख अज्ञानी**

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष व संप्रति संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की संयोजक श्रीमति सोनिया गॉधी को देश के संवधानिक सर्वोच्च पद पर आसीन होने विषयक विवाद से बचना चाहिए । लोक स्वराज्य मंच के संस्थापक व ज्ञान तत्व के संपादक श्री बजरंगलाल अग्रवाल ने अपनी यह बेबाक राय आज से करीब पौने दो वर्ष पहले व्यक्त कर दी थी ।

सभी जानते है कि सारे विवादों को दरकिनार करते हुए श्रीमति सोनिया ने गत मई माह में 14 वीं लोकसभा के गठन में प्रधानमंत्री का पद लेने से मना कर दिया और ताज श्री मनमोहन सिंह के सिर पर रख दिया गया । बहरहाल श्री बजरंगलाल ने 'ज्ञान तत्व' के 1 से 15 अक्टूबर 2002 अंक पॉच में पृष्ठ चार पर एक प्रश्न ''सोनिया गॉधी के सर्वोच्च पद पर प्राप्त करने की योग्यता पर उठे विवाद के संबंध में क्या दृष्टिकोण उचित है' के जवाब में निम्नांकित राय व्यक्त की थी –

'' सोनिया गॉधी एक विदेशी महिला है जो भारतीय नागरिक हैं । किसी भी भारतीय नागरिक को भारत के सर्वोच्च पद प्राप्ति में न कोई बाधा है, न होनी चाहिए । मेरे विचार में सोनिया जी भी इसमें अपवाद नहीं है । अतः उनके सर्वोच्च पद प्राप्ति की योग्यता में कोई कानूनी बाधा उत्पन्न करने के मैं विरूद्ध हूॅ । उन्हें चुनाव लड़ने ओर पद पाने का पूरा अधिकार होना चाहिए ।

राजनैतिक सोच का जहॉ तक संबंध है तो मेरा विचार है कि भारत की जनता को किसी ऐसे व्यक्ति को सर्वोच्च पद देने से बचना उचित ह । सोनिया जी को स्वयं भी ऐसे विवाद से बचना चाहिए और अगर न बचे तो जनता को उन्हें दूर रखना चाहिये किंतु उन्हें दूर करने हेतु कोई कानूनी प्रतिबंध लगाना भारत के नागरिकों की स्वतंत्रता का हनन होगा । ''

यहॉ स्पष्ट है कि लगभग पौने दो साल पहले व्यक्त की गई श्री बजरंगलाल की राय एक तरह से भविष्यवाणी , साबित हुई और सोनिया जी का पद से दूर रहना त्याग के रूप में चर्चित हो गया है ।